एएफआर

छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय, बिलासपुर

रिट याचिका सेवा क्रमांक 4017/2022
आदेश सुरक्षित दिनांक 14.06.2024
आदेश पारित दिनांक 23.08.2024

- प्रकाश सिन्हा पिता स्व. नारायण सिन्हा,
  आयु लगभग 59 वर्ष, निवासी–शिव मंदिर के पास
  आदर्श नगर कॉलेज रोड कवर्धा,
  जिला–कबीरधाम (छ.ग.) .....**याचिकाकर्ता**

बनाम

1. छत्तीसगढ़ राज्य, द्वारा–सचिव, गृह विभाग (पुलिस),
   मंत्रालय, महानदी भवन, नवा रायपुर,
   अटल नगर, जिला–रायपुर (छ.ग.)
2. पुलिस महानिदेशक, छत्तीसगढ़,
   सेक्टर–19, नवा रायपुर, अटल नगर,
   जिला – रायपुर (छ.ग.)
3. पुलिस महानिरीक्षक, पुलिस महानिरीक्षक कार्यालय
   बस्तर रेंज लालबाग, जगदलपुर – 494001 (छ.ग.)
4. पुलिस अधीक्षक, पुलिस अधीक्षक कार्यालय,
   जिला – उत्तर बस्तर कांकेर (छ.ग.) .....**उत्तरवादी**

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

याचिकाकर्ता के लिए – श्री विनोद देशमुख, अधिवक्ता
राज्य के लिए – श्री ऋषभ बिसेन, पैनल अधिवक्ता

माननीय न्यायमूर्ति श्री नरेन्द्र कुमार व्यास
(सीएवी आदेश)

01. याचिकाकर्ता ने पुलिस अधीक्षक, उत्तर बस्तर कांकेर/ उत्तरवादी क्र. 4 द्वारा पारित आदेश दिनांक 03.12.2014 (परिशिष्ट P/1) को चुनौती देते हुए भारतीय संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत वर्तमान रिट याचिका प्रस्तुत किया है, जिसके द्वारा दिनांक 01.12.2011 से दंड आदेश जारी होने तक की अवधि को अनाधिकृत अनुपस्थिति मानते हुए याचिकाकर्ता की सेवाएँ समाप्त कर दी गई हैं। याचिकाकर्ता ने पुलिस महानिरीक्षक/उत्तरवादी क्रमांक 3 द्वारा पारित आदेश दिनांक 21.03.2017 (परिशिष्ट P/2) के अपीलीय आदेश को भी चुनौती दी है, जिसके द्वारा याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत अपील खारिज कर दी गई है तथा पुलिस महानिदेशक द्वारा पारित आदेश दिनांक 05.04.2018 (परिशिष्ट – पी/3) जो कि दिनांक 04.03.2022 को याचिकाकर्ता को सूचित किया गया है, जिसके द्वारा याचिकाकर्ता द्वारा दायर दया अपील भी खारिज कर दी गई है।

02. अभिलेखों से परिलक्षित तथ्य यह है कि याचिकाकर्ता की नियुक्ति प्रारंभ में दिनांक 13.02.1992 को कांस्टेबल के पद पर हुई थी। उनकी पत्नी के खराब स्वास्थ्य/चिकित्सा मुद्दों के साथ–साथ उनकी स्वयं की मानसिक समस्या (गंभीर सिरदर्द/मस्तिष्क ट्यूमर) के कारण दिनांक 01.12.2011 से आरोप पत्र जारी होने की तिथि दिनांक 13.07.2012 तक वह अपने कर्तव्य पर उपस्थित नहीं हो सका। याचिकाकर्ता पर कर्तव्य से अनाधिकृत रूप से अनुपस्थित रहने तथा पुलिस विनियमन की पैरा 64 में निर्दिष्ट सेवा की सामान्य शर्तों के उल्लंघन के आरोप में आरोप–पत्र जारी किया गया था और याचिकाकर्ता

क्रमशः

को 07 दिवस के भीतर स्पष्टीकरण प्रस्तुत करने हेतु निर्देशित किया गया था किंतु उन्होंने आरोप–पत्र का समुचित उत्तर प्रस्तुत नहीं दिया, हालाँकि उन्होंने प्राधिकरण को अपनी पत्नी की चिकित्सीय स्थिति के साथ–साथ अपनी स्वयं की चिकित्सीय स्थिति के बारे में सूचित किया था कि वह ब्रेन ट्यूमर से पीड़ित है। याचिकाकर्ता के विरुद्ध विभागीय जांच की कार्यवाही प्रारंभ की गई, जिसमें अनुशासनात्मक प्राधिकारी/उत्तरवादी क्रमांक 4 द्वारा एकपक्षीय रूप से विभागीय जांच पूर्ण कर याचिकाकर्ता के विरुद्ध लगाए गए सभी आरोपों को प्रमाणित पाया गया।

03.याचिकाकर्ता की ओर से यह दलील दी गई है कि, विभागीय जांच प्रतिवेदन की प्रति उन्हें उपलब्ध नहीं कराई गई थी तथा एकपक्षीय विभागीय जांच संपादित किए जाने एवं दंडादेश पारित करने के पूर्व यह परीक्षण किया जाना आवश्यक था कि दिनांक 01.12.2011 से दिनांक 13.07.2012 अर्थात् सात माह की अवधि तक की कथित अनाधिकृत अनुपस्थिति स्वेच्छापूर्ण थी अथवा सद्भाविक थी। यदि अनुपस्थिति का कारण अस्वस्थता अथवा चिकित्सीय उपचार था, तो मात्र इस आधार पर याचिकाकर्ता को अनाधिकृत अनुपस्थिति का दोषी नहीं ठहराया जा सकता। तथापि, प्राधिकारीगण ने उक्त दृष्टिकोण से याचिकाकर्ता के प्रकरण का परीक्षण नहीं किया है। याचिकाकर्ता का यह भी कथन है कि संपूर्ण अनुशासनात्मक कार्यवाही उन्हें समुचित अवसर प्रदान किए बिना संपन्न कर दी गई तथा साक्षियों के परीक्षण उसकी अनुपस्थिति में अभिलिखित किए गए, साथ ही, उन्हें साक्षियों से प्रतिपरीक्षण का अवसर भी नहीं दिया गया। आगे यह भी तर्क दिया गया है कि उत्तरवादीगण द्वारा प्रस्तुतिकरण अधिकारी की नियुक्ति नहीं की गई तथा जाँच अधिकारी ने अभियोजक एवं न्यायाधीश की दोहरी भूमिका निभाई, जो विधि विरुद्ध है। इस प्रकार प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों एवं छत्तीसगढ़ सिविल सेवा (वर्गीकरण, नियंत्रण एवं अपील) नियम, 1966 के नियम 14 के उल्लंघन के कारण, संपूर्ण जांच कार्यवाही और परिणामी दंड आदेश निरस्त किए जाने योग्य हैं एवं प्रस्तुतिकरण अधिकारी की नियुक्ति किया जाना अनिवार्य रूप से अपेक्षित है।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

04.यह तर्क किया गया है कि, यह भी स्थापित कानून है कि अर्ध–न्यायिक प्राधिकरण में कार्य करने वाला एक जांच अधिकारी एक स्वतंत्र निर्णयकर्ता की स्थिति में होता है । उसे विभाग/अनुशासनात्मक प्राधिकारी/शासन का प्रतिनिधि नहीं माना जा सकता। उनका कर्तव्य मात्र विभाग द्वारा प्रस्तुत साक्ष्यों की जांच करना है, यहां तक कि दोषी अधिकारी की अनुपस्थिति में भी, यह देखना कि क्या बिना खंडन किये गए साक्ष्य यह मानने के लिये पर्याप्त है कि आरोप सिद्ध हो गए है। वर्तमान मामले में उपरोक्त प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया है।

05.याचिकाकर्ता द्वारा आगे यह भी तर्क दिया गया है कि सेवा से बर्खास्तगी/निष्कासन का दंड अत्यधिक असंगत है, विशेषतः तब जब याचिकाकर्ता अपनी अस्वस्थता एवं अपनी पत्नी के नियमित चिकित्सीय उपचार के कारण अपने कर्तव्यों का निर्वहन करने में असमर्थ था । इसके अतिरिक्त, यह तथ्य भी प्रमाणित हो चुका है कि याचिकाकर्ता मस्तिष्क ट्यूमर से पीड़ित था, जिसके उपचार हेतु उसका शल्यचिकित्सा भी किया गया। अतः अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा पारित दंडादेश विधिक रूप से त्रुटिपूर्ण है इसलिये प्रस्तुत रिट याचिका को स्वीकार करने हेतु उक्त आधारों पर याचिका प्रस्तुत की गई है।

06.प्रतिवादी/राज्य द्वारा प्रत्युत्तर प्रस्तुत किया गया है, जिसमें यह उल्लेखित है कि याचिकाकर्ता जब उत्तर बस्तर कांकेर में कांस्टेबल के पद पर पदस्थ था तो दिनांक 01.12.2011 को रात्रि गश्त हेतु नियुक्त किया गया था किंतु याचिकाकर्ता बिना किसी पूर्व सूचना के अपने कर्तव्य से अनुपस्थित पाया गया। अतः याचिकाकर्ता को उसकी अनुपस्थिति के संबंध में दिनांक 16.12.2011 को नोटिस प्रेषित किया गया परंतु याचिकाकर्ता अनुपस्थित ही रहा, जिससे गंभीर कदाचारण एवं अनुशासनहीनता पाये जाने से याचिकाकर्ता के विरुद्ध प्रारंभिक जांच प्रारंभ की गई, जिसमें यह तथ्य पाया गया कि याचिकाकर्ता को ए.एस.आई. तुलसी राम व अन्य कांस्टेबलों के साथ रात्रि गश्त की ड्यूटी आबंटित की गई थी किंतु वह बिना किसी सूचना के अनुपस्थित रहा तब कर्तव्य से अनुपस्थित रहने के कारण

क्रमशः

याचिकाकर्ता को दिनांक 15.01.2012, 24.01.2012 एवं 31.01.2012 को तीन अवसरों पर नोटिस प्रेषित किए गए किंतु याचिकाकर्ता ने उपरोक्त नोटिसों का जवाब नहीं दिया। जांच के दौरान यह तथ्य भी पाया गया कि पूर्व में भी याचिकाकर्ता अपने कर्तव्य से अनुपस्थित रहता था, जिससे यह साबित होता है कि वह अपने कर्तव्य से अनुपस्थित रहने का आदतन अपराधी है। अतः याचिकाकर्ता के उक्त आचरण को दृष्टिगत रखते हुए, उसे दिनांक 13.07.2012 को आरोप पत्र प्रेषित किया गया जिसमें दो आरोप थे, जो इस प्रकार है :–

> " (i) दिनांक 01.12.2011 को रक्षित केन्द्र कांकेर से रात्रि आउट गस्त ड्यूटी से बिना किसी सूचना के आरोप पत्र जारी दिनांक तक अनाधिकृत रूप से गैरहाजिर होकर कर्तव्य के प्रति घोर लापरवाही एवं अनुशासनहीनता बरतना।
>
> (ii) पुलिस रेग्युलेशन के पैरा क्रमांक – 64 में दिये गये सेवा कि सामान्य सेवा शर्त के कंडिका (2) एवं (4) का उल्लंघन करना।"

07.आगे यह प्रतिपादित किया गया है कि, उपर्युक्त आरोपों के आधार पर याचिकाकर्ता के विरुद्ध विभागीय जांच प्रारंभ की गई, जिसके लिए तत्समय के एसडीओपी, कांकेर (श्री मुकेश ठाकुर) को जांच अधिकारी नियुक्त किया गया तत्पश्चात, जांच अधिकारी द्वारा याचिकाकर्ता के विरुद्ध विभागीय जांच संपादित की गई तथा नोटिस दिनांकित 12.09.2012 के माध्यम से याचिकाकर्ता को जांच में उपस्थित रहने हेतु निर्देशित किया गया था किन्तु, याचिकाकर्ता ने पत्र दिनांक 18.09.2012 के माध्यम से सूचित किया कि उसकी पत्नी की अस्वस्थता तथा उसके बच्चों की परीक्षा के कारण वह दिनांक 24 एवं 25.09.2012 को कार्यालय में उपस्थित होगा किन्तु उपरोक्त तिथियों पर भी वह कार्यालय में उपस्थित नहीं हुआ और न ही इस संबंध में कोई सूचना प्रदान किया इसलिए जांच कार्यवाही को दिनांक 03.10.2012 तक के लिए स्थगित किया गया, किंतु याचिकाकर्ता पुनः अनुपस्थित रहा। इसके पश्चात याचिकाकर्ता को नोटिस दिनांक 16.11.2012, 29.11.2012 एवं 13.12.2012 प्रेषित गए तथा पुनः दिनांक 28.12.2012 को याचिकाकर्ता को जांच कार्यवाही में उपस्थित रहने हेतु नोटिस प्रेषित किया गया किन्तु याचिकाकर्ता जांच कार्यवाही में उपस्थित नहीं हुआ । उसने अपनी पत्नी की अस्वस्थता का कारण बताते हुए पुनः कार्यवाही की अगली तिथि प्रदान करने हेतु अनुरोध किया इसलिए याचिकाकर्ता के अनुरोध को देखते हुये याचिकाकर्ता को विभागीय जांच कार्यवाही में उपस्थित होने के लिए दिनांक 21.01.2013 को नोटिस देकर अंतिम अवसर प्रदान किया गया किन्तु याचिकाकर्ता पुनः अनुपस्थित रहा एवं दिनांक 12.02.2013 को याचिकाकर्ता ने चिकित्सीय उपचार के संबंध में कुछ दस्तावेज प्रेषित किये किन्तु कार्यवाही में सम्मिलित नहीं हुआ।

08. आगे यह तर्क किया गया कि, जांच अधिकारी श्री मुकेश ठाकुर के स्थानांतरण के कारण श्री वीरेंद्र शर्मा को नवीन जांच अधिकारी नियुक्त किया गया, जिन्होंने दिनांक 07.10.2013 को याचिकाकर्ता को विभागीय जांच के समापन हेतु नोटिस जारी किया तथा याचिकाकर्ता द्वारा बार–बार जांच कार्यवाही में अनुपस्थित रहने के बावजूद, उसे अंतिम अवसर प्रदान करते हुए दिनांक 03.12.2013 को एक अन्य नोटिस भेजा गया किंतु याचिकाकर्ता उक्त तिथि पर भी उपस्थित नहीं हुआ इसलिए उसके विरूद्ध एकपक्षीय कार्यवाही कर अभियोजन पक्ष के गवाहों को दिनांक 11.07.2014 को उपस्थित रहने हेतु निर्देशित किया गया। दिनांक 11.07.2014 को अभियोजन पक्ष के गवाह उपस्थित हुए, उनके बयान दर्ज करने के पश्चात् यह प्रगट हुआ कि याचिकाकर्ता दिनांक 01.12.2011 को गश्त ड्यूटी पर अनुपस्थित था और इतने सारे नोटिस प्रेषित करने के बावजूद, याचिकाकर्ता ने इसका कोई जवाब नहीं दिया और कभी भी विभागीय जांच कार्यवाही में शामिल नहीं हुआ, हालांकि उसे विभिन्न अवसरों पर नोटिस प्रदान किए गए थे और याचिकाकर्ता के विरूद्ध लगाए गए आरोप अभियोजन पक्ष के गवाहों के बयान के आधार पर साबित पाए गए थे इसलिए जांच अधिकारी द्वारा प्रस्तुत जांच रिपोर्ट के आधार पर आदेश दिनांक 03.12.2014 के द्वारा याचिकाकर्ता की सेवाएं उसके गंभीर कदाचरण के कारण समाप्त कर दी गई हैं। आदेश दिनांक 03.12.2014 से क्षुब्ध होकर, याचिकाकर्ता ने उत्तरवादी क्रमांक 3 के

क्रमशः

समक्ष अपील प्रस्तुत की, जिसे तर्क पूर्ण आदेश द्वारा निरस्त कर दिया गया, जिसके विरूद्ध याचिकाकर्ता ने उत्तरवादी क्रमांक 2 के समक्ष दया याचिका दायर की, जिसे भी इस निष्कर्ष के साथ निरस्त कर दिया गया है कि इतने सारे अवसर और नोटिस देने के बावजूद याचिकाकर्ता ने जांच कार्यवाही में भाग नहीं लिया, याचिकाकर्ता ने नोटिस का जवाब नहीं दिया, वह बिना किसी सूचना के अनाधिकृत रूप से अनुपस्थित रहा इसलिए याचिकाकर्ता की दया अपील भी खारिज कर दी गई।

09.आगे यह तर्क किया गया है कि, विवादित आदेश पुलिस विनियमों के प्रावधानों के अनुसार पारित किए गए हैं क्योंकि याचिकाकर्ता एक अनुशासित बल का सदस्य है, जहाँ अनुशासन सर्वोपरि होता है, जिसे याचिकाकर्ता द्वारा उल्लंघन किया गया है। यह भी प्रतिपादित किया गया है कि विभागीय अनुशासनात्मक कार्यवाही प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के अनुरूप संचालित की गई तथा याचिकाकर्ता को समुचित अवसर प्रदान किया गया किंतु याचिकाकर्ता उक्त अवसरों का लाभ उठाने में पूर्णतः विफल रहा। अतः विवादित आदेश न्यायसंगत एवं उचित है तथा इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

10.आगे यह भी प्रतिपादित किया गया है कि, किसी कर्मचारी को दंडित करने की शक्ति नियोक्ता के विवेकाधिकार के अंतर्गत आती है और न्यायालय इस विषय में हस्तक्षेप नहीं करते जब तक कि यह स्थापित न हो जाए कि विभागीय जांच, अनुशासनात्मक कार्यवाही अथवा दंडादेश प्रासंगिक नियमों, विनियमों या प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन के कारण दोषपूर्ण हैं या याचिकाकर्ता को उचित प्रत्युत्तर एवं बचाव का अवसर प्रदान नहीं किया गया अथवा आरोपित कदाचरण की तुलना में दी गई दंडावधि अत्यधिक असंगत है। इस मुद्दे पर **इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन लिमिटेड बनाम अशोक कुमार अरोड़ा और ललित पोपली बनाम केनरा बैंक** 2003 (3) **एससीसी** 583 में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा पहले ही विचार किया जा चुका है और वर्तमान मामले में नियमों, प्राकृतिक न्याय का कोई उल्लंघन नहीं है इसलिए रिट याचिका को निरस्त करने की प्रार्थना की गई है।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

11. याचिकाकर्ता द्वारा भी प्रतिउत्तर उन्हीं तथ्यों को दोहराते हुए प्रस्तुत किया गया है, जिसका उल्लेख इस न्यायालय द्वारा पूर्व पैराग्राफों में पूर्व में ही किया जा चुका है।

12. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने व्यक्त किया कि प्रतिवादीगण द्वारा एकपक्षीय विभागीय जांच संपन्न की गई । उक्त एकपक्षीय जांच एवं दंडादेश पारित करते समय यह परीक्षण किया जाना आवश्यक था कि दिनांक 01.12.2011 से 13.07.2012 (लगभग 7 माह) तक कथित अनाधिकृत अनुपस्थिति जानबूझकर की गयी थी या सद्भाविक थी और यदि यह अनुपस्थिति अस्वस्थता अथवा चिकित्सीय उपचार के कारण हुई है तो इसे अनाधिकृत अनुपस्थिति मानना न्यायोचित नहीं होगा ब्लकि इसे सद्भाविक अनुपस्थिति माना जा सकता है । हालाँकि प्राधिकरण ने उक्त पहलू पर याचिकाकर्ता के मामले की जांच नहीं की । उन्होंने आगे तर्क प्रस्तुत किया कि, सम्पूर्ण अनुशासनात्मक कार्यवाही एकपक्षीय रूप से प्रारंभ की गई तथा याचिकाकर्ता को उचित सुनवाई का अवसर प्रदान किए बिना निष्कर्षित कर दी गई । उक्त अनुशासनात्मक कार्यवाही याचिकाकर्ता की अनुपस्थिति में पूर्ण की गई, साक्षियों के कथन एकपक्षीय रूप से दर्ज किए गए एवं याचिकाकर्ता को साक्षियों से प्रतिपरीक्षण करने का कोई अवसर प्रदान नहीं किया गया।

13.उन्होंने आगे यह व्यक्त किया कि, प्रतिवादी प्राधिकारियों द्वारा छत्तीसगढ़ सिविल सेवा (वर्गीकरण, नियंत्रण एवं अपील) नियम, 1966 के नियम 14 के अधीन विहित प्रक्रिया का अनुपालन किए बिना ही विभागीय जांच संपन्न कर दी गई। प्रस्तुतकर्ता अधिकारी की नियुक्ति नहीं की गई, जिससे जांच प्रक्रिया प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के विपरीत रही है। अपने तर्क के समर्थन में, उन्होंने माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **चमोली सहकारी बैंक लिमिटेड बनाम रघुनाथ सिंह राणा व अन्य,** 2016 (12) **एससीसी** 20**(अनुच्छेद** 19, 20, 21, 221) **तथा उत्तर प्रदेश राज्य बनाम सरोज कुमार सिन्हा,** 2010 (2) **एससीसी** 772 में प्रतिपादित निर्णय का संदर्भ दिया है।

क्रमशः

14.राज्य के विद्वान अधिवक्ता का कथन है कि, विभागीय जांच की कार्यवाही प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत के अनुसार की गई है एवं याचिकाकर्ता पर आरोपित दंड उसके कदाचरण के अनुरूप है और इस प्रकार प्रस्तुत रिट याचिका निरस्त किए जाने की प्रार्थना की गई है।

15.मैंने, दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं के तर्क श्रवण किये तथा विभागीय जांच के अभिलेखों का भी अवलोकन किया जो इस न्यायालय द्वारा दिनांक 04.04.2024 को मंगाया गया था, जिसे इस न्यायालय के अवलोकन हेतु राज्य द्वारा प्रस्तुत किया गया है।

16.पक्षकारों के प्रतिद्वंदी तर्कों के परीक्षण से पूर्व, इस न्यायालय के लिए विभागीय जांच अभिलेखों का अवलोकन करना आवश्यक है। जांच कार्यवाही के अभिलेखों से स्पष्ट होता है कि याचिकाकर्ता ने आरोप–पत्र का उत्तर प्रस्तुत किया था, जिसमें उसने अपनी पत्नी की गंभीर बीमारी का उल्लेख किया था, जिसके पश्चात् सुनवाई कई अवसरों पर स्थगित की गई। दिनांक 18.09.2012 को याचिकाकर्ता ने अपनी पत्नी की अस्वस्थता के आधार पर जांच कार्यवाही स्थगित करने हेतु आवेदन प्रस्तुत किया, जिसके उपरांत विभिन्न तिथियों पर कार्यवाही स्थगित की गई । दिनांक 28.12.2012 को याचिकाकर्ता ने पुनः अपनी पत्नी की गंभीर बीमारी के संबंध में आवेदन प्रस्तुत किया । पुनः दिनांक 12.12.2013 को याचिकाकर्ता ने ओपीडी अभिलेख, अस्पताल की चिकित्सकीय पर्ची संलग्न करते हुए पुनः 10–12 दिन के स्थगन हेतु प्रार्थना किया तत्पश्चात्, याचिकाकर्ता की अनुपस्थिति के कारण कार्यवाही विभिन्न तिथियों में स्थगित की गई तथा दिनांक 24.09.2013 को नवीन जांच अधिकारी की नियुक्ति की गई, जिन्होंने याचिकाकर्ता को दिनांक 07.10.2013 एवं 23.12.2013 को नोटिस जारी किया तथा दिनांक 30.06.2014 को याचिकाकर्ता की अनुपस्थिति के कारण एकपक्षीय कार्यवाही प्रारंभ कर दिनांक 31.07.2014 को उत्तरवादीगण द्वारा तीन गवाहों अमृत कुजुर (उपनिरीक्षक), कांस्टेबल तामेश्वर मसीहारे, कांस्टेबल हीरामन जुरी एवं कांस्टेबल उमेश कावड़े का परीक्षण किया गया। दिनांक 09.01.2014 को उपनिरीक्षक तुलसीराम कश्यप का भी परीक्षण किया गया, जिसके पश्चात् जांच अधिकारी ने दिनांक 20.08.2014 को अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया, जिसका जवाब याचिकाकर्ता द्वारा दिनांक 22.09.2014 को दिया किया गया, तत्पश्चात् दिनांक 03.12.2014 को याचिकाकर्ता की सेवा समाप्त करने का विवादित आदेश पारित किया गया । अभिलेखों से यह परिलक्षित होता है कि याचिकाकर्ता ने जांच रिपोर्ट के प्रत्युत्तर में अपनी तथा अपनी पत्नी की अस्वस्थता से संबंधित अभिलेख प्रस्तुत किया था।

17.उपर्युक्त आदेश पत्रिकाओं के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि याचिकाकर्ता प्रारंभ से ही अपनी अनुपस्थिति का कारण अस्वस्थता बताता रहा किन्तु उक्त दावे के समर्थन में समुचित चिकित्सीय अभिलेख प्रस्तुत नहीं किए गए, जो कि उसकी अनुपस्थिति को विधिसंगत ठहराने हेतु आवश्यक था । रिट याचिका में संलग्न चिकित्सकीय अभिलेख दंडादेश पारित होने के पश्चात् के हैं, अतः इस न्यायालय द्वारा इस पर विचार नहीं किया जा सकता है। इस आधार पर याचिकाकर्ता की अनुपस्थिति को क्षम्य नहीं की जा सकती।

18. याचिकाकर्ता का आगे यह कथन है कि, जांच अधिकारी ने अभियोजक तथा न्यायाधीश दोनों की भूमिका निभाई है, जो इस न्यायालय द्वारा परीक्षणीय है । अभिलेखों के अवलोकन से यह स्पष्ट परिलक्षित होता है कि कोई प्रस्तुतीकरण अधिकारी नियुक्त नहीं किया गया, जो कि प्राकृतिक न्याय के मूल सिद्धांतों के प्रतिकूल है । यह विधि का सुस्थापित सिद्धांत है कि जांच अधिकारी, अभियोजक एवं न्यायाधीश दोनों की भूमिका नहीं निभा सकता । उक्त जाँच छत्तीसगढ़ सिविल सेवा (वर्गीकरण, नियंत्रण एवं अपील) नियम, 1966 (संक्षेप में "1966 के नियम") के नियम 14(5) का उल्लंघन करते हुए संपादित किया गया है, जिसमें जांच प्रक्रिया का पालन करने हेतु आवश्यक विधिक प्रावधान निर्दिष्ट हैं । उक्त प्रासंगिक नियम इस प्रकार हैं:–

क्रमशः

"नियम 14(5) जांच एवं प्रस्तुतकर्ता पदाधिकारियों की नियुक्ति:–

14. (5) (क) प्रतिवाद का लिखित कथन प्राप्त होने पर, अनुशासिक प्राधिकारी स्वयं, आरोप–पदों में से ऐसे आरोप पदों की जो स्वीकार नहीं किये गये हों, जांच कर सकेगा या उपनियम (2) के अधीन उस प्रयोजन के लिये, जांचकर्ता प्राधिकारी की नियुक्ति कर सकेगा, यदि वह ऐसा करना आवश्यक समझे ; और जहां समस्त आरोप शासकीय सेवक द्वारा प्रतिपाद के अपने लिखित कथन में स्वीकार कर लिये गये हों, वहां अनुशासिक प्राधिकारी ऐसा साक्ष्य लेने के पश्चात् जैसा कि वह उचित समझे, प्रत्येक आरोप के सम्बन्ध में अपना निष्कर्ष अभिलिखित करेगा और नियम ॥5 में दी गयी रीति में कार्य करेगा.

(ख) यदि शासकीय सेवक द्वारा, प्रतिवाद का कोई भी लिखित कथन प्रस्तुत न किया जाय, तो अनुशासिक प्राधिकारी स्वयं आरोप पदों की जांच करेगा, या 'उपनियम (2) के अधीन उस प्रयोजन के लिये जांचकता प्राधिकारी की नियुक्ति कर सकेगा यदि वह ऐसा करना आवश्यक समझे

(ग) जहां अनुशासिक प्राधिकारी स्वयं किसी भी आरोप पद की जांच करे, या ऐसे आरोप की जांच करने के लिये किसी जांचकर्ता प्राधिकारी की नियुक्ति करे, तो वह आदेश द्वारा आरोप पदों के समर्थन में अपनी ओर से मामला, प्रस्तुत करने के लिये किसी शासकीय सेवक या विधि व्यवसायी को नियुक्त कर सकेगा जो कि"प्रस्तुतकर्ता पदाधिकारी" के नाम से जाना जाएगा ।

मध्यप्रदेश शासन द्वारा, जिसे छत्तीसगढ़ राज्य ने अंगीकृत किया है, नियम 14(5) के अनुपालन में प्रस्तुतिकरण अधिकारी की नियुक्ति से संबंधित निर्देश जारी किए गए हैं । इन निर्देशों में यह स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है कि यदि प्रस्तुतिकरण अधिकारी की नियुक्ति नहीं की जाती है, तो यह जाँच प्रक्रिया को अमान्य कर सकता है । उक्त परिपत्र के प्रासंगिक अनुच्छेद इस प्रकार हैं:–

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

1.

(1) प्रत्येक विभाग अपने कार्यालय में विभाग के सेवानिवृत्त ऐसे अधिकारियों की सूची रखेंगे जिनको विभागीय नियमों एवं विभागीय जांच से संबंधित नियमों /प्रक्रिया का अच्छा ज्ञान को एवं इस प्रकार के प्रकरणों के निपटारे में दक्ष हों।

(2) जांचकर्ता तथा प्रस्तुतकर्ता अधिकारियों की नियुक्ति सेवानिवृत्त अधिकारियों के पैनल में से की जावे।

(3) विभागीय जांच के मामलों में नियुक्त जांचकर्ता/प्रस्तुतकर्ता अधिकारी को यह कार्य करने के लिये तथा पारिश्रमिक/मानदेय दिया जाये, उसके संबंध में प्रषासकीय विभाग वित्त विभाग से परामर्ष प्राप्त कर उनका मानदेय/पारिश्रमिक निर्धारित करें।

(4) सेवानिवृत्ति अधिकारी की जांचकर्ता/प्रस्तुतकर्ता अधिकारी के रूप में नियुक्ति करते समय यह सावधानी बरती जाये कि ऐसा अधिकारी अपचारी सेवक के पद की तुलना में वरिष्ठ पद से सेवानिवृत्त हुआ हो।

(5) उपरोक्त कार्य के लिये संबंधित विभाग द्वारा कार्यलयीन सुविधा उपलब्ध कराई जाये।

साथ ही उपरोक्त निर्देशों का कड़ाई से अनुपालन करने के निर्देश भी दिये गये हैं।

19. भारत संघ व अन्य बनाम राम लखन शर्मा, 2018 (7) एससीसी 670 के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने पैराग्राफ 27, 29, 30 और 37 में निम्नानुसार निर्णय दिया है:–

"27. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम सरोज कुमार सिन्हा[1] मामले में इस न्यायालय ने निर्धारित किया था कि जांच अधिकारी एक अर्ध–न्यायिक प्राधिकरण है, उसे एक स्वतंत्र निर्णायक के रूप में कार्य करना होगा और वह विभाग/अनुशासनात्मक प्राधिकरण/सरकार का प्रतिनिधि नहीं है। पैरा 28 और 30 में निम्नलिखित निर्णय दिया गया है: (एससीसी पृष्ठ 782)

"28. अर्ध–न्यायिक प्राधिकरण में कार्यरत जांच अधिकारी स्वतंत्र निर्णायक की स्थिति में होता है। उसे विभाग/अनुशासनात्मक प्राधिकरण/सरकार का प्रतिनिधि नहीं माना जाता है। उसका कार्य विभाग द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य की जांच करना है, यहां तक कि दोषी अधिकारी की अनुपस्थिति में भी यह देखना है कि क्या आरोपों को साबित करने के लिए अखंडित साक्ष्य पर्याप्त हैं। वर्तमान मामले में उपर्युक्त प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया है। चूंकि कोई मौखिक साक्ष्य की जांच नहीं की गई है, इसलिए दस्तावेज साबित नहीं हुए हैं, और यह निष्कर्ष निकालने के लिए उन पर विचार नहीं किया जा सकता था कि प्रतिवादियों के खिलाफ आरोप साबित हो गए हैं।

30. जब सरकारी कर्मचारी के खिलाफ विभागीय जांच की जाती है तो इसे आकस्मिक अभ्यास नहीं माना जा सकता है। जांच कार्यवाही भी बंद दिमाग से नहीं की जा सकती है। जांच अधिकारी को पूरी तरह से निष्पक्ष होना चाहिए। प्राकृतिक न्याय के नियमों का पालन न केवल यह सुनिश्चित करने के लिए किया जाना चाहिए कि न्याय किया गया है बल्कि यह स्पष्ट रूप से देखा गया है कि न्याय किया गया है। प्राकृतिक न्याय के नियमों का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि सरकारी कर्मचारी कार्यवाही में निष्पक्ष व्यवहार किया जाता है, जिसके परिणामस्वरूप सेवा से बर्खास्तगी/हटाने सहित दंड लगाया जा सकता है।"

"8. एक अन्य आधार जिस पर घरेलू जांच को अमान्य ठहराया गया, वह यह था कि प्रस्तुतकर्ता अधिकारी नियुक्त नहीं किया गया था। न्यायाधिकरण का यह दृष्टिकोण भी स्पष्ट रूप से अस्वीकार्य है। प्रस्तुतकर्ता अधिकारी नियुक्त किए जाने के लिए कोई कानूनी बाध्यता नहीं है। इसलिए, केवल यह तथ्य कि प्रस्तुतकर्ता अधिकारी नियुक्त नहीं किया गया था, जांच को रद्द करने का कोई आधार नहीं है (देखें: गोपालकृष्ण राजू बनाम कर्नाटक राज्य)। यह सच है कि प्रस्तुतकर्ता अधिकारी की अनुपस्थिति में यदि जांच अधिकारी प्रस्तुतकर्ता अधिकारी की भूमिका निभाता है, तो जांच अमान्य होगी और यह पहलू याचिकाकर्ता के लिए उठाए गए अगले बिंदु से उत्पन्न होता है, जिस पर मैं तुरंत बाद विचार करूंगा।

9. तीसरा आधार जिस पर औद्योगिक न्यायाधिकरण ने घरेलू जांच को अवैध माना, वह यह था कि जांच अधिकारी ने प्रस्तुतकर्ता अधिकारी की भूमिका निभाई थी। निष्कर्षों का प्रासंगिक हिस्सा इस प्रकार है:

> 'कर्मचारी के विद्वान अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि जांच अधिकारी द्वारा प्रबंधन के गवाहों से पूछे गए प्रश्न स्वयं यह दर्शाते हैं कि वह कर्मचारी के प्रति पक्षपाती और पूर्वाग्रही था। इस बात का कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है कि कोई प्रस्तुतकर्ता अधिकारी क्यों नियुक्त नहीं किया गया और क्यों जांच अधिकारी ने प्रबंधन के गवाहों से प्रश्न पूछने का भार अपने ऊपर ले लिया। एक्सटेंशन ए–6 में जांच कार्यवाही से पता चलता है कि बचाव पक्ष द्वारा प्रबंधन के गवाहों से जिरह के बाद, जांच अधिकारी ने स्पष्टीकरण के तौर पर कुछ और प्रश्न पूछे हैं, लेकिन उनकी प्रकृति से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उन्हें कमी को पूरा करने के लिए निर्देशित किया गया है। प्रबंधन के विद्वान वकील ने तर्क दिया कि जांच अधिकारी ने प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन किया है और घरेलू जांच पूरी तरह से वैध है। मेरा मानना है कि जांच अधिकारी द्वारा खुद प्रबंधन के लिए प्रस्तुतकर्ता अधिकारी की भूमिका निभाना मामले की जड़ तक जाता है और जांच को गलत साबित करता है।'
>
> जहाँ तक कानून की स्थिति का सवाल है, यह आम बात है कि अगर जाँच अधिकारी अभियोक्ता की भूमिका निभाता है और बचाव पक्ष के गवाहों से जिरह करता है या अभियोजन पक्ष के गवाहों से ऐसे सवाल पूछता है जिससे उनकी मन:स्थिति स्पष्ट रूप

क्रमशः

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

से पक्षपातपूर्ण हो जाती है, तो जाँच प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के विरुद्ध होगी। लेकिन इस मामले में विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या जाँच अधिकारी ने ऐसा किया? यह भी स्थापित कानून है कि जाँच अधिकारी को जहाँ भी आवश्यक हो, स्पष्टीकरण के लिए गवाहों से सवाल पूछने का अधिकार है और जब तक जाँच अधिकारी द्वारा गवाहों से सवाल पूछे जाने के बाद दोषी कर्मचारी को गवाहों से जिरह करने की अनुमति है, तब तक जाँच कार्यवाही को अनुचित नहीं माना जा सकता। (देखें मुलचंदानी इलेक्ट्रिकल एंड रेडियो इंडस्ट्रीज लिमिटेड बनाम वर्कमैन)"

30. इस न्यायालय को वर्कमेन बनाम लाम्बाबारी टी एस्टेट्स 8 में यह टिप्पणी करने का अवसर मिला कि यदि जांच अधिकारी जांच अधिकारी के रूप में अपना कार्य जारी नहीं रखता है, बल्कि अभियोजक बन जाता है, तो जांच दोषपूर्ण हो जाती है। निम्नलिखित टिप्पणी की गई: (एफएलआर पृष्ठ 362)

"प्रबंधन द्वारा पहले आरोप पर की गई जांच की अध्यक्षता प्रबंधक ने स्वयं की थी। यह जांच सहायक प्रबंधक और दो अन्य लोगों की उपस्थिति में की गई थी। जांच की प्रक्रिया सही नहीं थी। प्रबंधक ने बयान दर्ज किए, उन मजदूरों से जिरह की जो अपराधी थे और तथ्यों के आधार पर अपने बयान दर्ज किए और अपराधी मजदूरों से अपने द्वारा दर्ज किए गए बयानों की सच्चाई के बारे में पूछताछ की। प्रबंधक ने जांच अधिकारी के रूप में अपने कार्य को अलग नहीं रखा, बल्कि बारी–बारी से गवाह, अभियोक्ता और प्रबंधक बन गए। परिणामस्वरूप जांच का रिकॉर्ड अव्यवस्थित और असंतोषजनक है।"

37. उच्च न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि जांच अधिकारी ने अभियोजक के रूप में भी काम किया है, स्वतंत्र निर्णायक की क्षमता खो गई है, जबकि निर्णायक की उनकी स्वतंत्र भूमिका पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। परिस्थितियों में, पक्षपात का सिद्धांत लागू होगा और उच्च न्यायालय ने अपीलकर्ताओं को नए सिरे से जांच करने की स्वतंत्रता देकर बर्खास्तगी के आदेशों को रद्द करने में सही किया। हम यह स्पष्ट करते हैं कि हमारे द्वारा ऊपर की गई टिप्पणियां वर्तमान मामलों के तथ्यों पर आधारित हैं।"

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

20.माननीय मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय ने **भारत संघ एवं अन्य मोहम्मद नसीम सिद्दीकी,** 2005 (1) **एलएलजे** 931 के मामले में निम्नलिखित निर्णय दिया है:–

"4. इसका प्रमुख निर्णय भारत संघ के माध्यम से उसके सचिव, रेल मंत्रालय, नई दिल्ली व अन्य बनाम मोहम्मद नसीम सिद्दीकी का मामला है, जिसकी रिपोर्ट 2005 (1) एलएलजे 931 में की गई थी, जिसमें उच्चतम न्यायालय ने पैराग्राफ 7 में निम्नानुसार माना है:– 7. प्राकृतिक न्याय के मूलभूत सिद्धांतों में से एक यह है कि कोई भी व्यक्ति अपने मामले में न्यायाधीश नहीं होगा। इस सिद्धांत में सात अच्छी तरह से मान्यता प्राप्त तथ्य शामिल हैं: (i) निर्णायक निष्पक्ष और पूर्वाग्रह से मुक्त होगा, (ii) निर्णायक अभियोजक नहीं होगा, (iii) शिकायतकर्ता निर्णायक नहीं होगा, (iv) कोई गवाह निर्णायक नहीं हो सकता है, (v) आरोपों की जांच करते समय निर्णायक को मामले के तथ्यों के बारे में अपना व्यक्तिगत ज्ञान नहीं बताना चाहिए, (vi) निर्णायक अपने वरिष्ठों या अन्य के कहने पर फैसला नहीं करेगा, (vii) निर्णायक रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री के संदर्भ में मुद्दे का फैसला करेगा, न कि बाहरी सामग्री के संदर्भ में यदि इन मूलभूत नियमों में से किसी एक का भी उल्लंघन किया जाता है, तो जांच को निष्प्रभावी कर दिया जाएगा।

इसके अलावा, पैराग्राफ–16 में, माननीय न्यायाधीश ने निम्नानुसार कानूनी स्थिति का सारांश दिया: –

(i) जांच अधिकारी, जो न्यायाधीश की स्थिति में है, प्रस्तुतकर्ता अधिकारी के रूप में कार्य नहीं करेगा, जो अभियोजक की स्थिति में है।

(ii) अनुशासनात्मक प्राधिकारी के लिए प्रत्येक जांच में प्रस्तुतकर्ता अधिकारी नियुक्त करना आवश्यक नहीं है। प्रस्तुतकर्ता अधिकारी की नियुक्ति न होने से, अपने आप में जांच को निष्प्रभावी नहीं किया जा सकता।

(iii) जांच अधिकारी, सत्य तक पहुंचने या स्पष्टीकरण प्राप्त करने के उद्देश्य से, अभियोजन पक्ष के गवाहों और बचाव पक्ष के गवाहों से भी प्रश्न पूछ सकता है। प्रस्तुतकर्ता अधिकारी की अनुपस्थिति में, यदि जांच अधिकारी तथ्यों को जानने के लिए अभियोजन पक्ष के गवाहों से कोई प्रश्न पूछता है, तो उसे उसके बाद दोषी कर्मचारी को उन स्पष्टीकरणों पर ऐसे गवाहों से जिरह करने की अनुमति देनी चाहिए।

(iv) यदि जांच अधिकारी अभियोजन पक्ष के गवाहों को अभियोजन मामले में आगे ले जाकर नियमित रूप से मुख्य परीक्षा आयोजित करता है, या विभागीय गवाहों से उत्तरों से भरे महत्वपूर्ण प्रश्न पूछता है, या बचाव पक्ष के गवाहों से जिरह करता है या अभियोजन मामले के कर्मचारी को स्थापित करने के लिए सुझावात्मक प्रश्न पूछता है, तो जांच अधिकारी अभियोजक के रूप में कार्य करता है, जिससे जांच को निष्फल किया जाता है।

(v) चूंकि प्रस्तुतकर्ता अधिकारी की अनुपस्थिति अपने आप में जांच को निष्फल नहीं करेगी और यह माना जाता है कि जांच अधिकारी सत्य को उजागर करने के लिए किसी भी या सभी गवाहों से प्रश्न पूछ सकता है, इसलिए यह प्रश्न कि क्या जांच अधिकारी ने प्रस्तुतकर्ता अधिकारी के रूप में कार्य किया है, इस बात के संदर्भ में तय किया जाना चाहिए कि जांच में साक्ष्य को किस तरह से दर्ज किया गया है।

क्या जांच अधिकारी ने केवल जांच अधिकारी के रूप में कार्य किया है या प्रस्तुतकर्ता अधिकारी के रूप में भी कार्य किया है, यह प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्भर करता है। पक्षपात के किसी भी आरोप से बचने और जांच को अवैध और निष्फल घोषित किए जाने के जोखिम से बचने के लिए, वर्तमान प्रवृत्ति हमेशा प्रस्तुतकर्ता अधिकारी की नियुक्ति करने की प्रतीत होती है, सिवाय साधारण मामलों के। जैसा भी हो।"

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

इसी प्रकार, मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने **जी.एम.टेलीकॉम फैक्ट्री, जबलपुर बनाम पी.वी. उपाध्याय व एक अन्य, 1991 एमपीएसटी 204** के मामले में पैरा 6 में समान परिस्थितियों में निम्नानुसार निर्णय दिया है:–

"6. उपरोक्त तथ्यों के अलावा यह मानने के कारण हैं कि जांच अधिकारी प्रतिवादी संख्या 1 के प्रति पक्षपाती था। इस संबंध में, यह इंगित किया जा सकता है कि जांच अधिकारी ने प्रतिवादी संख्या 1 के प्रतिनिधियों को प्रतिवादी और उसके गवाहों से पहले मुख्य परीक्षा में पूछताछ करने की अनुमति नहीं दी, लेकिन उन्हें सीधे जांच अधिकारी द्वारा गहन जिरह के माध्यम से और फिर प्रस्तुतकर्ता अधिकारी द्वारा संभवतः इस धारणा के तहत जिरह के लिए सामना किया गया कि उन्हें झूठे गवाह के रूप में शामिल किया गया था। इस प्रक्रिया और इस तरह के आचरण को किसी भी मामले में मंजूरी नहीं दी जा सकती। अगर जांच अधिकारी अपराधी या उसके गवाहों से अपराधी की ओर से अपना बयान देने के बाद पूछताछ करता है तो कोई अवैधता नहीं होगी; लेकिन जांच अधिकारी द्वारा अपराधी और उसके गवाहों से सीधे जिरह के लिए सामना करना अपमानजनक है जो निश्चित रूप से अपराधी के लिए बहुत पूर्वाग्रह पैदा करेगा। याचिकाकर्ता की ओर से पेश हुए विद्वान वकील जांच अधिकारी के रिकॉर्ड को देखने के बाद, जो उनके पास उपलब्ध था, उपरोक्त स्थिति को बदल नहीं सके। और इसके विपरीत उसी की पुष्टि की। यह सब नहीं है, बल्कि जांच अधिकारी ने डब्ल्यू.ओ. रजिस्टर को देखा जो जांच का हिस्सा नहीं था और उन्होंने इस साक्ष्य के आधार पर अपनी राय बनाई, जिस तक प्रतिवादी नंबर 1 की न तो कोई पहुंच थी और न ही उसमें निहित प्रविष्टियों को देखने का कोई अवसर था। इन तथ्यों से जांच अधिकारी की सोच स्पष्ट रूप से सामने आई कि वह

प्रतिवादी नंबर 1 के खिलाफ था। ऊपर बताए गए तथ्यों और परिस्थितियों में, न्यायाधिकरण द्वारा लिया गया दृष्टिकोण गलत नहीं कहा जा सकता है, बल्कि पूरी तरह से उचित है।"

इसी प्रकार, कर्नाटक उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने **एन.आर. धनंजयन बनाम इंडियन ओवरसीज बैन व एक अन्य का प्रबंधन, 2006 एलएलआर 726** के मामले में पैराग्राफ 8 में निम्नलिखित निर्णय दिया है:–

"8. पूरी कार्यवाही को पढ़ने से हमें यह स्पष्ट है कि जांच अधिकारी को ऐसा लग रहा था कि वह प्रबंधन का प्रतिनिधित्व कर रहा है, जैसा कि इन कार्यवाहियों से स्पष्ट है। जिस तरह से जांच अधिकारी ने कार्यवाही का संचालन किया और जिस तरह से उसने प्रश्न पूछे, गवाहों की जांच की, उससे यह स्पष्ट रूप से साबित होता है कि जांच अधिकारी ने इस मामले में अभियोजक और न्यायाधीश की भूमिका निभाई है। कानून में यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि जांच अधिकारी केवल स्पष्टीकरण मांग सकता है। स्पष्टीकरण वास्तविक अर्थों में वास्तविक स्पष्टीकरण होना चाहिए, लेकिन मुख्य परीक्षा/जिरह आदि नहीं, जैसा कि वर्तमान मामले में किया गया है।"

21. इस प्रकार, माननीय उच्चतम न्यायालय और विभिन्न उच्च न्यायालयों द्वारा निर्धारित वैधानिक नियमों और कानून का अनुपालन न करने के कारण इस न्यायालय द्वारा पूरी जांच को रद्द कर दिया जाना चाहिए। सामान्यतः यह न्यायालय प्रकरण को उस स्थिति में नए सिरे से निर्णय लेने के लिए जहां दोष पाया गया है, प्रकरण को अनुशासनात्मक प्राधिकारी की ओर प्रतिप्रेषित किया जाता है, किन्तु चूंकि याचिकाकर्ता की सेवाएं वर्ष 2014 में समाप्त कर दी गई थी तब से 10 साल से अधिक समय व्यतीत हो चुका है और इस तथ्य पर भी विचार करते हुए कि जब यह याचिका दायर की गई थी उस समय याचिकाकर्ता की आयु 59 वर्ष थी, अब वह शीघ्र ही सेवानिवृत्ति होने वाला है इसलिए यह न्यायालय सजा की मात्रा के मुद्दों की जांच कर रही है क्योंकि यह न्यायालय अपने फैसले को प्रतिस्थापित कर सकती है।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

22. यह विधि का स्थापित सिद्धांत है कि यदि अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा प्रदत्त दंड न्यायालय की अंतरात्मा को झकझोरने वाला प्रतीत होता है, तो सामान्यतः अनुशासनात्मक प्राधिकारी अथवा अपीलीय प्राधिकारी को दंड पर पुनः विचार हेतु निर्देशित किया जाना चाहिए । सज़ा की मात्रा पर न्यायिक समीक्षा का दायरा उपलब्ध है किंतु यह दायरा सीमित परिधि में ही उपलब्ध होता है । ऐसा तभी होता है जब अधिरोपित जुर्माना आश्चर्यजनक रूप से कदाचार की प्रकृति से असंगत प्रतीत होता है, जिस पर अदालतें नाराज होंगी अथवा असहमति प्रकट करेंगी । ऐसे मामले में भी, जुर्माने के आदेश को निरस्त करने के बाद निर्णय लेने का अधिकार अनुशासनात्मक/अपीलीय प्राधिकारी पर छोड़ दिया जाना चाहिए और यह न्यायालय का कार्य नहीं है कि वह दंड की मात्रा निर्धारित करके अपने निर्णय को प्रतिस्थापित करे । हालाँकि, यह केवल दुर्लभ और असाधारण मामलों में ही होता है, जहां अदालत मुकदमेबाजी को छोटा करने के लिए सक्षम प्राधिकारी द्वारा दी गई सजा के स्थान पर सजा की मात्रा के बारे में ठोस कारणों का उल्लेख करते हुए अपना दृष्टिकोण रखने के बारे में सोच सकती है। इस मुद्दे पर माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **भारत संघ व अन्य बनाम पूर्व कांस्टेबल राम करण, 2022 (1) एससीसी 373** में विचार किया गया है। माननीय उच्चतम न्यायालय ने अपने निर्णय के अनुच्छेद 25 में प्रतिपादित किया है, जो इस प्रकार है:–

"25. इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ ने बी.सी. चतुर्वेदी बनाम भारत संघ व अन्य 2 मामले में इन सिद्धांतों को चुना था, जिसमें निम्नांकित टिप्पणी की गई थी:–

"18. उपरोक्त विधिक स्थिति की समीक्षा से यह स्थापित होगा कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी और अपील पर अपीलीय प्राधिकारी, तथ्यान्वेषी प्राधिकारी होने के नाते अनुशासन बनाए रखने के उद्देश्य से साक्ष्य पर विचार करने का विशेष अधिकार रखते हैं। उन्हें कदाचार की गंभीरता को ध्यान में रखते हुए उचित दंड लगाने का विवेकाधिकार दिया गया है। न्यायिक समीक्षा की शक्ति

का प्रयोग करते समय उच्च न्यायालय/न्यायाधिकरण सामान्यतः दंड पर अपने निष्कर्ष को प्रतिस्थापित नहीं कर सकता है और कोई अन्य दंड नहीं लगा सकता है। यदि अनुशासनात्मक प्राधिकारी या अपीलीय प्राधिकारी द्वारा लगाया गया दंड उच्च न्यायालय/न्यायाधिकरण की अंतरात्मा को झकझोरता है, तो वह उचित रूप से राहत प्रदान करेगा, या तो अनुशासनात्मक/अपीलीय प्राधिकारी को लगाए गए दंड पर पुनर्विचार करने का निर्देश देगा या मुकदमे को छोटा करने के लिए, वह स्वयं, असाधारण और दुर्लभ मामलों में, इसके समर्थन में ठोस कारणों के साथ उचित दंड लगा सकता है।"

23.उपर्युक्त विधिक स्थिति तथा राज्य द्वारा पुलिस अधिनियम, 1851 के अधीन प्रदत्त शक्तियों के अंतर्गत निर्मित पुलिस विनियमों के परिप्रेक्ष्य में, याचिकाकर्ता पर आरोपित दंड की मात्रा पर राज्य द्वारा पुनर्विचार किया जाना आवश्यक है । यह उल्लेखनीय है कि पुलिस अधिनियम, 1851 को छत्तीसगढ़ पुलिस अधिनियम, 2007 द्वारा निरसित कर दिया गया है, किन्तु अधिनियम, 2007 की धारा 50 में प्रावधान है कि मौजूदा पुलिस विनियमन राज्य द्वारा परिवर्तित या निरस्त होने तक लागू रहेगा । इस प्रकार अधिनियम, 1851 के तहत बनाये गये पुलिस विनियमन अस्तित्व में हैं और वर्तमान में भी पुलिस विभाग में लागू हैं । पुलिस विनियम 226 यह उपबंधित करता है कि सेवा से बर्खास्तगी अंतिम उपाय होना चाहिए तथा सामान्यतः इसे तब लागू नहीं किया जाना चाहिए जब पुलिस बल के सदस्य को सही करने के सभी प्रयास समाप्त हो जाएं। पुलिस विनियम 226 के प्रासंगिक प्रावधान इस प्रकार हैं:–

"226. **अपराध जिनके लिये दंड दिया जाना–** यह निश्चय करने के लिये कि किसी विशेष अपराध के लिय शास्ति आरोपित किया जाना चाहिये निम्नलिखित नियमों का पालन किया जाना चाहिए–

(अ) पदच्युत अंतिम अवलम्ब (recourse) है और साधारणतया आरोपित नहीं किया जाना चाहिए जब तक कि सुधार के सभी जरिए असफल न हो जाएं।

(ब) यदि उपनिरीक्षक के लिये पदच्युति (बरखास्तगी) बहुत कड़ा दण्ड समझा जाता है, तब वह चाहे तो सेवा से निकाल दिया जाए (यह पदच्युति नहीं माना जाता) या कि दर्शित अवधि के लिये परिवीक्षाधीन उप निरीक्षक के पद पर पदावनत कर दिया जाए।

नोट– (i) पदच्युति के आदेशों का प्रभाव उस दिनांक से होगा जिस दिनांक को वे पारित किये जाए उस दिनांक से प्रभाव होगा जिस दिनांक को पदच्युति व्यक्ति कार्य से मुक्त किया जाता है जो भी बाद का हो।"

;पद्ध

24. अब इस न्यायालय को यह परीक्षण करना आवश्यक है कि याचिकाकर्ता द्वारा किए गए कदाचार की प्रकृति के सापेक्ष आरोपित दंड आनुपातिक है अथवा असंगत है । इस परीक्षण में यह तथ्य भी समाहित है कि जांच वैधानिक नियमों के उल्लंघन करके की गई है और इस तथ्य पर भी ध्यान देना होगा कि विनियमन 226 के अनुसार कांस्टेबलों की सेवा से बर्खास्तगी अधिकारियों द्वारा पालन किया जाने वाला अंतिम रास्ता होना चाहिए, साथ ही इस न्यायालय द्वारा अनुशासनात्मक मामले में हस्तक्षेप की शक्ति के संबंध में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्धारित मापदंडों के प्रकाश में भी, साथ ही साथ माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्धारित मापदंडों के आलोक में यह न्यायालय स्वयं अनुशासनात्मक मामले में हस्तक्षेप कर दंड निर्धारित करने के लिए सक्षम है। यह न्यायालय **राम करण (सुप्रा)** के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के मद्देनजर नया निर्णय देने के लिए मामले को अनुशासनात्मक प्राधिकारी को प्रेषित किए बिना सजा में हस्तक्षेप कर सकता है और सजा दे सकता है। यह विधि का स्थापित सिद्धांत है कि हस्तक्षेप की शक्ति अत्यंत सीमित है, जब तक कि वह प्रक्रियात्मक अनुचितता से ग्रस्त न हो या न्यायालय की चेतना को आघात न पहुँचे अथवा तार्किकता एवं नैतिक मूल्यों के प्रतिकूल

क्रमशः

न हो, जैसा कि माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **भारत संघ बनाम के.जी. सोनी, 2006 (6) एस.सी.सी. 794** में प्रतिपादित किया गया है, जहां माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा निम्नानुसार प्रतिपादित किया गया हैः–

> " 14. इन सभी निर्णयों में एक बात समान है कि न्यायालय को प्रशासक के निर्णय में तब तक हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए जब तक कि वह अतार्किक न हो या प्रक्रियागत अनुचितता से ग्रस्त न हो या न्यायालय की अंतरात्मा को झकझोरने वाला न हो, इस अर्थ में कि वह तर्क या नैतिक मानकों की अवहेलना करता हो। वेडनसबरी मामले [एसोसिएटेड प्रोविंशियल पिक्चर हाउस लिमिटेड बनाम वेडनसबरी कॉर्पोरेशन, (1948) 1 केबी 223: (1947) 2 ऑल ईआर 680 (सीए)] में जो कहा गया है, उसके मद्देनजर न्यायालय प्रशासक द्वारा किए गए विकल्प की शुद्धता पर विचार नहीं करेगा और न्यायालय को प्रशासक के निर्णय के स्थान पर अपना निर्णय नहीं लेना चाहिए। न्यायिक समीक्षा का दायरा निर्णय लेने की प्रक्रिया में कमी तक सीमित है, न कि निर्णय तक।
>
> 15. दूसरे शब्दों में कहें तो, जब तक अनुशासनात्मक प्राधिकारी या अपीलीय प्राधिकारी द्वारा लगाया गया दंड न्यायालय/न्यायाधिकरण की अंतरात्मा को झकझोर न दे, तब तक हस्तक्षेप की कोई गुंजाइश नहीं है। इसके अलावा, मुकदमेबाजी को कम करने के लिए, यह असाधारण और दुर्लभ मामलों में, इसके समर्थन में ठोस कारणों को दर्ज करके उचित दंड लगा सकता है। सामान्य तौर पर अगर लगाया गया दंड चौंकाने वाला अनुपातहीन है, तो अनुशासनात्मक प्राधिकारी या अपीलीय प्राधिकारी को लगाए गए दंड पर पुनर्विचार करने का निर्देश देना उचित होगा।
>
> (बल दिया गया)"

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

इसी प्रकार, माननीय उच्चतम न्यायालय ने **उत्तर प्रदेश राज्य बनाम मन मोहन नाथ सिन्हा, 2009 (8) एससीसी 310** में निम्नलिखित निर्णय दिया है:–

> "15. कानूनी स्थिति अच्छी तरह से स्थापित है कि न्यायिक समीक्षा की शक्ति निर्णय के विरुद्ध निर्देशित नहीं है, बल्कि निर्णय लेने की प्रक्रिया तक ही सीमित है। न्यायालय निर्णय के गुण–दोष के आधार पर निर्णय नहीं देता है। उच्च न्यायालय के लिए यह खुला नहीं है कि वह जांच अधिकारी के समक्ष प्रस्तुत साक्ष्यों का पुनर्मूल्यांकन करे और जांच अधिकारी द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों की अपील न्यायालय के रूप में जांच करे और अपने निष्कर्ष पर पहुंचे। वर्तमान मामले में, उच्च न्यायालय ने साक्ष्यों को इस तरह से स्कैन करने में गंभीर त्रुटि की, मानो वह अपील न्यायालय हो। मामले पर विचार करते समय उच्च न्यायालय का दृष्टिकोण स्पष्ट त्रुटि से ग्रस्त है और हमारे विचार–विमर्श में, इस मामले पर कानून के अनुसार उच्च न्यायालय द्वारा नए सिरे से विचार किए जाने की आवश्यकता है। इस संक्षिप्त आधार पर, हम मामले को उच्च न्यायालय को वापस भेजते हैं।"

इसी प्रकार, माननीय उच्चतम न्यायालय ने **भारती एयरटेल लिमिटेड बनाम ए.एस. राघवेंद्र, 2024 (6) एससीसी 418** में निम्नलिखित निर्णय दिया है:–

> "29. जहां तक तथ्यों का पुनर्मूल्यांकन करने की उच्च न्यायालय की शक्ति का सवाल है, यह नहीं कहा जा सकता कि संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के तहत यह पूरी तरह से अस्वीकार्य है। हालांकि, उच्च न्यायालय के समक्ष न्यायिक जांच का सामना कर रहे न्यायाधिकरण के आदेश में हस्तक्षेप को उचित ठहराने के लिए सामान्य से अधिक त्रुटिपूर्णता का स्तर होना चाहिए। हमें नहीं लगता कि वर्तमान तथ्यों में ऐसी स्थिति बनी हुई है। इसके अलावा, प्रतिवादी द्वारा अपने तर्कों के समर्थन में जिन निर्णयों पर भरोसा किया गया है, उनका अनुपात मौजूदा तथ्यों में लागू नहीं होगा।"
>
> (बल दिया गया)

क्रमशः

25.माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्धारित मापदंडों पर विचार करते हुए, इस तथ्य पर भी विचार करते हुए कि जाँच प्रक्रिया का संचालन 1966 के नियमों के नियम 14 का उल्लंघन करते हुए किया गया है और इस तथ्य पर भी विचार करते हुए कि दिनांक 13.02.1992 को याचिकाकर्ता को प्रारंभ में नियुक्त किया गया था तथा दिनांक 03.12.2014 को उसकी सेवाएं समाप्त कर दी गई थी और उसने लगभग 22 वर्षों की सेवा पूर्ण कर ली थी, तथा आरोप–पत्र जारी करने से पूर्व याचिकाकर्ता के विरुद्ध कोई कदाचरण आरोपित नहीं किया गया था, और इस तथ्य पर भी विचार करते हुए कि याचिकाकर्ता शीघ्र ही सेवानिवृत्त होने वाला है, और साथ ही इस तथ्य पर भी विचार करते हुए कि आरोपित दंड याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत कारणों के परिप्रेक्ष्य में अत्यधिक कठोर प्रतीत होता है मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचता हूँ कि सेवा से निष्कासन के स्थान पर, याचिकाकर्ता को दिनांक 03.12.2014 से अनिवार्य सेवानिवृत्ति में परिवर्तित करते हुए कम सजा दी जा सकती है, इस प्रकार याचिकाकर्ता न्यूनतम पेंशन व अन्य स्वीकार्य सेवानिवृत्ति शुल्क पाने का अधिकारी होगा। तदनुसार, दिनांक 03.12.2014 (अनुलग्नक पी/1), दिनांक 21.03.2017 (अनुलग्नक पी/2) और दिनांक 05.04.2018 (अनुलग्नक पी/3) को पारित आदेशों को निरस्त किया जाता है एवं याचिकाकर्ता को दी गई सेवा समाप्ति की सजा को अनिवार्य सेवानिवृत्ति में परिवर्तित किया जाता है।

26. परिणामस्वरूप, उक्त रिट याचिका आंशिक रूप से स्वीकृत की जाती है।

सही/–
(नरेन्द्र कुमार व्यास)
न्यायाधीश

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

(Translation has been done through AI Tool: SUVAS)

अस्वीकरणः हिन्दी भाषा में निर्णय का अनुवाद पक्षकारों के सीमित प्रयोग हेतु किया गया है ताकि वो अपनी भाषा में इसे समझ सकें एवं यह किसी अन्य प्रयोजन हेतु प्रयोग नहीं किया जाएगा । समस्त कार्यालयी एवं व्यवहारिक प्रयोजनों हेतु **निर्णय का अंग्रेजी स्वरुप ही अभिप्रमाणित माना जाएगा और कार्यान्वयन तथा लागू किए जाने हेतु उसे ही वरीयता दी जाएगी।**